पुस्तक परिचय

पुस्तक किनारों पर उगती पहचानः फर्क़ों की राजनीति के नए नारीवादी आयाम
सम्पादन आभा भैया
प्रकाशन राजकमल
भाषा हिन्दी
पृष्ठ 207

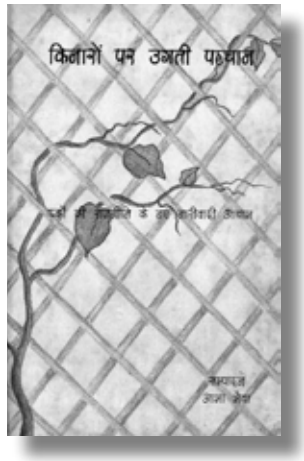

पहली बूंदों का बरसना-कच्ची मिट्टी का महकना

एकल औरत व यौनिकता

एकल औरत – कहां से शुरू करें। बहुत सारे कागज़ों में 'एकल औरत' का नाम ढूंढा, लेखों को परखा। कभी वह नारी आन्दोलन के मंच पर 'परित्यक्ता' की भीड़ में नज़र आती है। कभी नारी शोध के दायरों में वो 'तलाकशुदा' के सर्वे का निचोड़ बनकर सामने आती और कभी कल्याणकारी पहलकदमियों में 'पतिता उद्धार समिति' की अगुवाई करने वाली 'वेश्या' के नाम से अख़बारों में छपती है। जैसे-जैसे उनकी कही-अनकही सुनने लगे तो उनके सपनों, संघर्षों उमंगों, दुखों और साहस के अक्स हमें नज़र आने लगे। तब साफ समझ आया कि हममें से कई औरतें- 'बेचारी' और 'रंडी', 'देवी' और 'दासी' से दूर खड़ी साधारण औरतें- बहुत असाधारण ज़िन्दगी जी रही थीं।

'शादी' की ज़रूरतों को नकारने का मतलब यह नहीं कि एकल औरतों की अपनी इच्छाएं, अपनी यौनिक उमंग, आकर्षण और किसी के करीब होने के सपने नहीं होते। बसन्ती ने अपनी जवानी में से अन्दर-ही अन्दर बहुत महसूस किया। जब ठेकेदार के हाथ पीछे से उसके कन्धों को छूते हैं, तो ठहर जाता है उसका दिल और महसूस कर लेता है, एक सुकून। ढूंढ ही लेते हैं वे दोनों वक्त मन्दिर तक जाने का और वादा कर लेते हैं देवी के सामने, "जिस दिन भी कोई एक दूसरे को दुख देगा, रिश्ता तोड़ लेंगे।" बसन्ती की अथक इच्छा है कि कोई उसके जीवन का बोझ बांट ले। उसका तन और मन दोनों ढूंढते रहे हैं इस आग को बुझाने वाला नीर और कभी उसका घूंट पीकर तो कभी उस कुएं की मुंडेर से अन्दर झांककर लौट आते हैं, उसके पांव। कभी समाज में जगह खोने के डर से वह अपनी ज़रूरतों को नकार कर अपने लिए घुटन खरीद लेती है और कभी छिपकर जी लेती है अमृत के क्षण, सिनेमा हाल के अंधेरे में, बनती इमारतों के चढ़ाव और उतराव में, हांफती सांसों में बोझ से कांपते हाथों के तनाव में। कुछ मिलने के बावजूद कितना बड़ा हिस्सा इन आकांक्षाओं का दब जाता है बिल्डिंगों के मलबे में, ज़िन्दगी की दौड़धूप की थकान के मरघट में। दरअसल न मन के अंधरे में, न समाज के चौंधिया देने वाले उजाले में जगह पाती है इन रिश्तों को पनपने की, फैलने की।

पन्नी अपनी ज़िन्दगी को इतना खुला जीती है कि वह समाज की मनाहियों की परवाह किए बगैर मन का आंगन रिश्ते के गोबर से लीप लेती है और लगा लेती है अपनी प्रेम-बेल, छिपकर नहीं, खुली हवा में। उसके मन में कुंठा नहीं एक गर्व है अपने मन से किए इस रिश्ते पर।

"आदमी को छोड़ने के बाद एक मुसलमान दोस्त से प्यार हो गया। हालातों से तो उम्र भर लड़ना है मुझे, पर अपनी इच्छा से कैसे बैर?" पर जब इस रिश्ते की हिंसा और कुंठा को भुगतती है तो अन्दर तक मुरझा जाती है। अपने बालों को गुंथते हुए कहती है, "कभी छिपता था इन्हीं बालों में, अब इन्हें ही पकड़कर खींचता है।" पर, फिर भी अपनी यौनिक पहचान को दबाती नहीं, छिपाती नहीं।

पन्नी की तरह परमेश्वरी भी अपना रिश्ता खुले आम जीती है। दोनों उम्र में कम और जवान हैं। और दोनों ही किसी हद तक स्वतन्त्र। इसलिए परमेश्वरी अपने प्रेम को और प्रेमी की मुसलमान पहचान को न अपने परिवार से छिपाती है, न अपने पास पड़ोस से। हां, दोनों के मन में यह कड़वाहट गहरी है कि उनके प्रेमियों ने झूठ बोला कि वे ग़ैर शादीशुदा हैं।

इन सभी जीवनियों में यह सामने आया है कि ग़रीब 'एकल औरतों' के रिश्ते होते भी हैं तो उन्हीं मर्दों से जो शादीशुदा हैं। और इनमें से प्रायः सभी समाज के उन तत्वों से जुड़े हैं जिन्हें असामाजिक माना जाता है। परमेश्वरी के प्रेमी का पुलिस लगातार पीछा करती है। बसन्ती का प्रेमी ही उसकी बेटी गायब करके बेच देता है। पन्नी का प्रेमी शराब में धुत्त पन्नी को मारने से नहीं चूकता।

अपनी मर्ज़ी से बनाए इन रिश्तों में भी इनके साथ खूब मनमानी होती है, उनके श्रम और शरीर दोनों का शोषण होता है। पन्नी पांच बार गर्भपात करा चुकी है। परमेश्वरी हर संम्भोग के दर्द को चुपचाप झेल जाती है या उससे बचने की नाकाम कोशिश करती है। पर ये औरतें भी खुलकर अपनी यौनिक इच्छा की न बात कर पाती हैं और न ही पूर्ति। पर कोशिश ज़रूर करती हैं, समाज के आगे इस सच का आईना धरने की कि "मर्द के मरने या छूटने से औरत की यौन इच्छाएं नहीं मरतीं।

नफ़ीसा का धीरे से कहना "कोई शरीर छूता है तो अजीब-सी बेचैनी हो जाती है। आजकल एक लड़का चिट्ठियां लिख रहा है। कहता है प्यार करता है। एक ओर डर लगता है बदनामी न हो जाए। दूसरी ओर मन में आता है कि कोई है चाहने वाला जिसे मेरा हंसना, बोलना अच्छा लगता है।" नफ़ीसा अभी बहुत जवान है। परिवार के साथ रहने की अपनी बन्दिशें हैं।

भंवरी का अनुभव कुछ अन्य मनाहियों के दायरे को भी तोड़ता है जब वह बुखार में अपने बेटे के पास सोते हुए अचानक अपने शरीर में कसमसाहट महसूस करती है और बेटे को अलग कर देती है। और चम्पा जिसने अपने तन की ज़रूरतों की चोली को अपनी "मां की पहचान" के दामन के नीचे छिपा लिया है, कहती है, "कभी मेरे बदन में भी कुछ-कुछ होने लगता है तब देर तक नींद नहीं आती।" पर अलग-अलग तरह से सभी जीवनियां इन दबी-छिपी इच्छाओं की बातें कहती हैं।

इस दौरान औरतें खुद अपनी और दूसरी औरतों की 'इच्छा' छवियों से लड़ती रहती हैं। 'अच्छी पत्नी' और 'बुरी वेश्या' इन दोनों पहचानों की लड़ाई की सामान्य धरती को हम स्वीकारने से बहुत डरते हैं। आर्थिक स्वतंत्रता यौनिकता को खुद संचालित करने की स्वतन्त्रता और यौनिक अत्याचारों से बचाव, ऐसे कई मुद्दे दोनों की ज़िन्दगियों के लिए संघर्ष के मुद्दे हैं।

इन जीवनियों में बातें सिर्फ़ मर्द और औरत के रिश्ते तक नहीं रुकीं। औरत को औरत का सहारा कब मन का होता है और कब तन का, यह कौन कहे और कैसे? इस सच को हाथों में पकड़ाया भंवरी ने जो इन जीवनियों की उम्र में सबसे आगे थी। अपनी दो सहेलियों के नाम उसकी बाजू पर गोदे हुए थे जिन्हें दिखाकर एक सरल सी बात कह गई भंवरी, "चमड़ी सिकुड़ जाए पर सहेलियन की याद नहीं सिकुड़े।" पर जिस सच ने हमें चौंकाया वह था उसका अपनी सौत से रिश्ता। "बाहर सुखराम (पति) का नाम तो धीरे-धीरे मिट गया पर अन्दर-ही-अन्दर इन दो औरतों की दोस्ती पनपने लगी। वो एक दूसरे की पीठ मलतीं, दुलार से एक दूसरे की देह को देखतीं और दिखातीं और छुतीं-छुआतीं तन एक दूसरे का। भंवरी सहज शब्दों में सुना जाती कि

"कैसे दोनों एक दूसरे के पांवों पर पांव धर और छाती से छाती लगाकर साथ सोतीं।" हमें इस अहसास को नाम देने की ज़रूरत भंवरी ने कभी महसूस न होने दी। उसे जाने कहां से पता था "वो बसन्त जो दो औरतों के बीच में ही खिलता है।"

भंवरी ने अपना एक अनुभव सुनाया एक बार- "बामनी (ब्राह्मणी) सहेली घर-परिवार के बाहर खेतन में मिलती थी अपनी सहेली से। बहुत प्यार करती थी वो। एक-दूजी को देखे बैगर रह नहीं सकती थीं। दुनिया भले ही पहनने-खाने न दे पर इस शौक पर जोर नहीं चलता।" हर जाति, गांव की गरीबी-अमीरी में पलते इन रिश्तों को जब भंवरी हमसे बांटती, तो यह साफ़ था कि वो वही सुना रही थी जो उसने अपने शरीर से जाना था और मन की आंखों से पहचाना था। साठ-सत्तर साल की भंवरी के लिए ये रिश्ते और उनकी बातचीत उतनी ही सहज थी जितना यह बताना कि वो अपनी बहू को अपने बेटे से कैसे बचाती थी। निर्णयात्मक नैतिक बोझ उसने कभी भी महसूस नहीं होने दिया। और हमें सिखाती रही कैसे मन की चादर को फैलाने से औरतों को छांव मिलती है।

सहेलियों के बीच पसरी नफ़ीसा ने भी इस भेद को उजागर किया- "एक हूक-सी उठती है बचपन की सहेली के लिए। पहचान लूंगी उसको जहां भी मिले। मेरे से बड़ी थीं वे दो बहनें। दोनों मुझे गुड़िया बना देतीं और लड़ती थीं मुझे साथ रखने के लिए। बड़ी बहन तो मेरा हाथ पकड़ कर उस जगह रख देती। कुरकुरा लगता था। बाल हाथ में आ जाते थे। मकान मालिक के बेटे ने बाद में उसकी इज़्ज़त लूटी और बेच आया उसे कोठे में। आदमी तो है ही ऐसी चीज़, उसे तो सूंघना ही गुनाह। औरत, औरत के साथ आज़ादी से रह सकती है। औरत, औरत को समझती है पर मर्द के बीच में आने से गड़बड़ हो जाती है।"

तभी रोशनी (जो शादीशुदा है) ने कहा, "मर्द के होते हुए भी औरतें आपस में प्यार करने लग जाती है। मैं जानती हूं बस्ती की उन दो औरतों में ऐसा ही प्यार है दीन-दुनिया भुला बैठी हैं।" इस पर निर्मला कह उठी, "पर आदमी तो रिश्ता छोड़, दो सहेलियों के साथ से डरता है। नफ़ीसा और मेरी दोस्ती को लेकर सब ऐतराज़ करते थे। पहले बाप ने हाथ तोड़े अब पति रोकता है। कमरे में बन्द करके मारा, पर मैंने कहा मैं अपनी सहेली नहीं छोड़ूंगी।"

इस एक्शन रिसर्च की धरती पर जब हमने कदम रखा था तो समाज के दो पूर्वाग्रहों को टटोलने की वचनबद्धता थी, एक तो समाज का यह नज़रिया कि 'एकल औरतें' यौन इच्छाओं से परे हो जाती हैं- यानी कि वे गैर यौनिक हो जाती हैं, पति के साथ-साथ उनकी इच्छाएं भी मर जाती हैं, दब जाती हैं। और दूसरा यह कि वे अपने यौनिक संबंधों, इच्छाओं आकर्षणों के बारे में खुलकर बात नहीं करेंगी। यही नहीं, अगर 'एकल औरतों' के साथ अकेले या सामूहिक स्तर पर इस तरह की बातें हुईं तो समाज का और खासतौर से औरतों का बहुत विरोध होगा। हमने देखा कि ये दोनों पूर्वाग्रह हमारे भ्रम थे या हमारे मध्यमवर्गीय डर। दरअसल वे हमारे नैतिक मूल्यों और आग्रहों की छवि थे। सिर्फ़ बात ही नहीं, रात की मीटिंगों में, वर्कशाप के अपनेपन में, नाच-गानों के दौरान, यौनिकता के अलग-अलग पहलू हमारे सामने आए- सिर्फ बात में नहीं, हाव-भाव में, आपसी छेड़छाड़ में, गाने के सुरों में और नर्मी से एक दूसरे को छूने के क्षणों में। जागे मुक्त मन की महक हमें आपस में लगातार बांधती रही।

औरतों की ये खुसुर-पुसुर उनकी शोर से पुरज़ोर ज़िन्दगियों के बीच दब भले ही जाए पर ख़ामोश नहीं होती। उनके लिए यह कहना, सुनना और देखना न अतिवादी न अलगाववादी। ज़िन्दगी की इतनी बहती धाराओं में से इस मन्द बहती धार के छीटों का सुख भी उतना ही भिगों देने वाला है जितना और सब कुछ। यह उन्होंने खुद जान भी लिया और हमें सिखा भी दिया।"

पुस्तक के कुछ अंश।